नोकामनादेवी

सहस्रों पुस्तकों के लेखक—

हर्षि शिवव्रतलाल वर्मन एम० ए०

कृत

—❀❀—

प्रकाशक—

मुन्शीलाल गोविल "विश्व प्रेमी"

मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी

मैनेजिंग ऐडीटर "मनुष्य बनो" मासिक

—❀❀—

नुष्य बनो कार्यालय

याल कम्पाउण्ड अलीगढ़

अक्टूबर १९६० | मूल्य केवल ३८ न०पै०

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज बमन एम

भूमिका

जानने वाले कम से कम यह जानते हैं कि "मनोकामना-
मधेनु गाय, कल्पद्रुम अथवा कल्पवृक्ष की प्रशंसा है कि
ो कुछ माँगो वह मिलता है," किन्तु वह यह नहीं जानते
स्वयं मनोकामनादेवी से अपनी मुँह माँगी कामना की
स प्रकार कर सकते हैं ?"

इस छोटी सी पुस्तक में यही विषय अर्थात् "मनोकामना-
जो माँगोगे वही मिलेगा वर्णन न किया गया है। पुस्तक
छाँट अधिकतर दातादयाल महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज
म०, ए०, की पुस्तकों से की गई है, जिसकी स्वीकृति यह सेवक
तज्ञता के रूप में प्रकट करते हुए, इसे उन्हीं के अर्पण करता
। दातादयाल जो की सभी पुस्तकें वैसी ही सही और सच्ची
जै कि वेद और शास्त्र, "वेद पुराण नहा हैं झूँठे, झूँठा जो
ारें" चूँकि हम में विवेक और विचार की कमी है। इसी-
बात समझ में नहीं आती। अतः इस पुस्तक का भी प्रत्येक
सही और सच्चा है। इनके सही होने का अनेक बार मैंने
किया है। और जब जब मैंने मनोकामनादेवी से जो जो
ह मुझको मिला। परन्तु कैसे ? माँगने का जो तरीका है
माँगो। बन्दे को दरे दयाल से क्या नहीं मिलता।

अपना एपन लाय कर त्रिया पूजें भोत।
सफल होय मनकामना तुलसी प्रेम प्रतीत ॥

ी अनुभव के आधार पर मुझे पूर्ण विश्वास है कि जो
मनोकामनादेवी से मांगेंगे वह आपको अवश्य मिलेगा।
क भी सन्देह नहीं है। माँगो और दिया जायगा।
मिलेगा। खटखटाओ और खोला जायगा। यह मानी
।

पुस्तक के अध्ययन करने से आपको स्वयं ही निश्चय हो जायगा। पुराणों में स्थान स्थान पर कल्प वृक्ष का वर्णन मिलता है। कहते हैं कि इस वृक्ष के नीचे बैठकर प्राणी जो भी कामना करता है—वह पूर्ण हो जाती है। पर यह वृक्ष है कहाँ? जब किसी ने इस वृक्ष को देखा ही नहीं तो फिर लाभ उठाने की तो बात ही क्या? हाँ! इस कराल कलिकाल में एक दूसरे प्रकार का कल्पवृक्ष है जो दीनों के लिए कामधेनु, रोगियों के लिए धन्वन्तरि, अनाथों के लिए नाथ, भक्तों के लिए भक्ति स्वरूप और मुमुक्षओं के लिए मोक्ष स्वरूप है। यह है एक परम पुरुष पूर्ण धनी, परमगुरु परम संत, परमदयाल, परम स्नेही, परम हितैषी, परमतत्व, सतगुरु, सत्तनाम, पूर्णज्ञान, पूर्ण विवेक, सारभेद, सर्वाधार और परमानन्द। हमारी समझ में तो यही मनोकामना देवी और कल्प वृक्ष है। जो इनसे माँगो वह मिले। जो इनके सतसंग में जाये पूर्ण शान्ति पाये। बिना इनके इस कलयुग में निस्तारा नहीं।

कहाँ तक कहें, इस कल्प वृक्ष की छत्र छाया में जो कोई भी आ जाता है वह दुखी नहीं रह सकता। सुखी ही हो जाता है। तभी तो सन्तों ने कहा है।

सतगुरु सुरतरु की छाया। दुख भये दूर निकट जो आया॥

हमने अनेकों नर–नारियों को इस मनोकामना देवी तथा कल्प वृक्ष से लाभ उठाते हुए देखा है। अपना तो कहना ही क्या है। आइये! इनसे लाभ उठाइये और जीवन बनाइये। जो यह कहें वह करिये। और फिर देखिए कि कैसी बहार है। यह मनोकामना देवी अथवा सतसंग का चमत्कार है।

सतगुरु सबका सबका कल्याण करें।

मुन्शी, विश्व प्रेमी।

Rs.

मनोकामनादेवी

प्रथम अध्याय

क्या हमारी इच्छाओं की पूर्ति हो सकती है ?

इच्छाओं में सांसारिक और परमार्थिक तथा लोक और परलोक वस्तुओं की इच्छा दोनों ही होती हैं।

हमारी निकृष्ट दशा स्पष्ट बतला रही है कि हम सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति करने में अत्यन्त विवश हैं, अब रही परलोक की इच्छा इसके सम्बन्ध में अवश्य हमको गर्व है कि हम अपना परलोक बना सकते हैं। परलोकका बनाना अच्छी बात है, किन्तु प्रश्न यह है कि परलोक बनता भी है अथवा नहीं। यदि आज्ञा हो तो हम इसकी खोज करें। परलोक का तात्पर्य बैकुन्ठ और स्वर्ग में जाने से है। बैकुन्ठ और स्वर्ग क्या है ? आइये इसका काल्पिक दृश्य आपको दिखलावें।

सर्वप्रथम हिन्दुओं के बैकुन्ठ तथा स्वर्ग को लीजिए:— हिंदुओं का बैकुन्ठ वह स्थान है जहाँ अत्यन्त स्वच्छता और पवित्रता है और नर्क इसके विरुद्ध मलीनता और विष्टा का कुंड है। हिन्दुओं का बैकुन्ठ ऐसा क्यों बनाया गया ? क्योंकि भारतवर्ष में शुद्धता, स्वच्छता और पवित्रता बहुत है, यहां पवित्रता और स्वच्छता से रुचि और मलीनता से घृणा रहती है।

इसके उपरान्त मुसलमानों के स्वर्ग को लीजिए:— इनका स्वर्ग वह स्थान है जिसमें ठंडे जल के स्रोत और नहरें प्रचलित रहती हैं और सुन्दर युवती और युवक अधिकतासे मिलते हैं नरक की दशा इसके विरुद्ध भयानक अग्निकुन्ड के समान

है। मुसलमानों का स्वर्ग ऐसा क्यों बनाया गया ? अरब गर्म और शुष्क स्थान है। जहाँ जल नहीं मिलता, गर्मी आपत्ति उत्पन्न करती है, जीव विषयी और लालची होते हैं।

अब एक तीसरा स्वर्ग आइस लैंड वालों का लीजिए:— आइसलैंड टापू के रहने वालों का स्वर्ग वह स्थान है जो गर्म अग्नि कुण्ड के समान है और नर्क इसके विरुद्ध अत्यन्त ठंडा और सदैव हिम समान है। आइसलैंड वालों का स्वर्ग ऐसा क्यों बनाया गया ? क्योंकि आइसलैंड हिम समान स्थान है, जीव ठन्ड के कारण आपत्ति में रहते हैं और गर्मी की इच्छा रखते हैं।

इसी प्रकार और जिस जिस देश के जो जो स्वर्ग होंगे वह उस देश के रहने वालों की इच्छाओं के अनुसार होंगे। क्या यह सम्भव है कि स्वर्ग भी अनेक और एक दूसरे के विरुद्ध हों ? इसका उत्तर सम्भवतः कोई व्यक्ति हाँ में न देगा। फिर जब अभी स्वर्ग का ही पता नहीं है तो उसमें प्रवेश करने के सम्बन्ध में क्या कहा जाय ? कवि ग़ालिब वर्णन करते हैं:—

हमको मालूम है जन्नत की हक़ीक़त लेकिन।
दिल के बहलाने को ग़ालिब यह ख्याल अच्छा है॥

भाई ! सच्ची बात तो यह है कि जब तक हमारी सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति न हो हमारी सुरत ऊँचे लोकों में प्रवेश ही नहीं कर सकती, हमारी सांसारिक वासनायें हमको मृत्यु के पश्चात भी भौतिक शरीर धारण करने के लिए विवश करेंगी और हमारी सुरत ऊँचे लोकों की ओर न जा सकेगी। शहंशाह जी महाराज वर्णन करते हैं:—

ऐ शहंशाह ख्वाहिशों का, खात्मा बिलखैर कर।
वरना तुझको यहां से जाकर, आना फिर पड़ जायगा॥

शेख सादी वर्णन करते हैं—तूने संसार का क्या कार्य किया कि जो अब आकाश की ओर झुका है।

हिन्दू यदि इस बात को सत्य नहीं मानते तो यह उनका अपना विचार है, हिन्दू तर्कशास्त्र उनके विचार का पक्ष नहीं करतो। हाँ मुसलमान यद्यपि आवागमन को नहीं मानते, वह हमारी सम्मति के पक्ष में न हों उनको अधिकार है। किन्तु मुसलमानों में भी ऐसे पूरन पुरुष हुए हैं जो आवागमन को मानते थे। महान् पुरुष मौलाना रूम को मुसलमानों में बड़ी मान प्रतिष्ठा है वह अपने सम्बन्ध में वर्णन करते हैं—कि मैंने घास की भांति अनेकों बार जन्म लिया है और सात सौ सत्तर (७७०) शरीर मैंने देखे हैं।

यह आवागमन नहीं तो क्या है? इसे छोड़िए। अब प्रश्न यह है कि क्या हमारी शारीरिक, मानसिक, आत्मिक, आर्थिक, जातीय और देशीय इच्छायें पूर्ण हो सकती हैं? हमारा उत्तर है, पूर्ण हो सकती हैं। फिर प्रश्न होगा पूर्ण किस प्रकार हो सकती हैं? हमारा उत्तर है मनो कामना देवो की सहायता से।

—××—

द्वितीय अध्याय

मनोकामना देवो क्या है? मनोकामना देवी, कामधेनु गाय, कल्पद्रम तथा कल्पवृक्ष इन सबका तात्पर्य एक ही है। यह नाम वास्तव में आत्म शक्ति, आत्मज्ञान और अध्यात्म एक समान हैं। दुर्भाग्यवश जीवों को आत्मा की समझ शीघ्र ही नहीं आती, इस लिए ऋषियों ने ऐसे नाम गढ़ दिए हैं जिनसे कुछ न कुछ उनकी समझ में आजाये। यह आत्मशक्ति अथवा आत्मा ही है जिससे मन

और शरीर उत्पन्न होते, जीवित रहते और अपनी कामनायें प्राप्त करते हैं। आत्मा समस्त शक्तियों का भन्डार है, किन्तु चूँकि हमारी दृष्टि मन और शरीर ही तक जाती है इसलिए मनमानी आत्म शक्ति हमारे भाग्य में नहीं आती, इसके विरुद्ध यदि हम आत्मदर्शी हो जाँय तो हममें आत्मा की शक्ति आ जावे और फिर हम जो चाहें अपनी चिन्तन और मनन शक्ति से कर सकते हैं। नीचे हम कामधेनु गाय की एक कथा वर्णन करते हैं जिससे ज्ञात होगा कि यह मनोकामनादेवी अथवा इच्छा पूर्ति करने वाली देवी आत्मशक्ति आत्मज्ञान और आत्मा ही है:—

एक बार राजा विश्वामित्र का आगमन महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में हुआ, ऋषि ने विश्वामित्र को राजा समझकर इनका बड़ा आदर मान किया और इनकी सेना के आराम की समस्त सामिग्री शीघ्र ही एकत्रित करदी। विश्वामित्र को आश्चर्य हुआ, पूछने लगे, "वशिष्ठ जी ! तुम देखने में तो निर्धन और साधारण साधु हो, तुम्हारी कुटी में कोई वस्तु नहीं, फिर तुमने झटपट यह सामिग्री कहाँ से एकत्रित करदी" ?

वशिष्ठ ने उत्तर दिया, "भगवन् ! मेरे पास कामधेनु गाय है जो समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति कर देती है।"

विश्वामित्र—कामधेनु गाय मुझको देदो।

वशिष्ठ—कामधेनु गाय तुमको नहीं मिल सकती।

नहीं का सुनना था कि विश्वामित्र आगबबूला हो गये और चाहा कि कामधेनु गाय वशिष्ठ से जबरदस्ती छीन लें किन्तु जब वह लड़ने पर आये कामधेनु गाय के शरीर से सैकड़ों राक्षस और देव उत्पन्न हो गये जिन्होंने विश्वामित्र की सेना को क्षणमात्र में अंग भंग कर दिया।

विश्वामित्र ने विचार किया था कि कामधेनु गाय कोई

पशु होता है, किन्तु बार बार जब उनकी हार हुई और उन्होंने देख लिया कि उनका क्षत्रिय तेज वशिष्ट तेज की अपेक्षा निश्फल रहा तो उन्होंने परिणाम निकाला, "हो न हो कामधेनु गाय ब्रह्म तेज है" इसलिए उन्होंने ब्रह्म ऋषि बनने की ठान ली और राजपाट को सदैव के लिए छाड़ दिया।

ब्रह्मऋषि बनने के लिए विश्वामित्र ने तपस्या करना आरम्भ की परन्तु मैनिका ने उनकी तपस्या भंग करदी और वह संसारी व्यक्तियों की भाँति भोग विलास करने लगे। मैनिका से शकुन्तला उत्पन्न हुई। कुछ समय पश्चात जब उनको काम धेनु गाय की सुध आई, भोग विलास को छोड़ कर फिर तप करना आरम्भ किया। साहसी पुरुष थे अब की बार सम्हल गये और अपने तप को पूर्ण कर लिया। तपस्या से उनमें अनेक प्रकार की सिद्धि शक्ति उत्पन्न हो गई जिनसे वह अभिमानी होकर वशिष्ठ के निकट आये और ब्रह्मऋषि की पदवी के अभिलाषी हुए। वशिष्ठ ने उनको ब्रह्मऋषि की पदवी नहीं दी, राजऋषि की पदवी दी। ब्रह्मऋषि की पदवी न मिलने से विश्वामित्र बिगड़ खड़े हुए और महर्षि वशिष्ठ को नीचा दिखाने के लिए राजनीति की चाल चलने लगे, उनको बदनाम किया, शत्रुता से काम लिया, लोभ दिया, यहाँ तक कि एक एक करके वशिष्ठ के सौ पुत्रों को मार भी डाला किन्तु वशिष्ठ ने भी उनको ब्रह्मऋषि नहीं कहा, सदैव राजऋषि कहा।

तप करने के उपरान्त भी विश्वामित्र को इतना साहस फिर भी नहीं था कि वशिष्ठ सम्मुख आकर विरोध करें, क्योंकि वशिष्ठ की कामधेनु गाय का उनको फिर भी भय था। अन्त में निराश होकर बैठ रहे परन्तु ब्रह्मऋषि कहलाने का विचार उनको सताता रहा। एक रात्रि को इस विचार ने उनको बहुत ताया, वह सोच विचार में पड़ गये, "मैंने ब्रह्मऋषि कहलाने

के लिए क्या क्या उपाय नहीं किए राज छोड़ा, पाठ छोड़ा कठिन से कठिन तप किया योग और ध्यान में अधिक समय व्यतीत किया, जन्म बीत गया, किन्तु वशिष्ठ ने मुझको ब्रह्मऋषि नहीं कहा मैंने उसके साथ शत्रुता की, उसके पुत्रों को मार डाला परन्तु उसने अपनी हठ नहीं छोड़ी, जब मुझको पुकारा राजऋषि कहकर पुकारा। वह मुझको ब्रह्मऋषि क्यों नहीं कहता ? मैंने उसको इस हठ का घोर दण्ड दिया, सन्तानरहित तक कर दिया किन्तु उसने अपनी टेक नहीं छोड़ी। क्या करूँ, जिससे वशिष्ठ मुझको ब्रह्मऋषि कहे ! वह नहीं मानता, मुझको बराबर राज-ऋषि कहे जाता है। बात क्या है वह क्यों यह ऊँची पदवी मुझको नहीं देता ! तपस्या अकारथ गई, शत्रुता भी काम न आई, लोभ लालच भी उसको अपनी टेक से न हटा सका और आनन्द की बात यह है कि जब मिलता है प्रसन्नतापूर्वक हँसता हुआ मिलता है, मन में न किसी बात का दुःख है न खेद है, सन्तान तक का दुःख उसको नहीं प्रतीत होता और न मन में मेरी शत्रुता का ही विचार है।"

सोचते-२ सिर भिन्ना उठा मस्तिष्क चकराने लगा, किन्तु कुछ समझ में न आया। अन्त में विवश हो कर अपनी कुटी में लेट रहे, प्रयत्न किया कि निद्रा आ जाए, किन्तु मन की तरंगों के सताये हुए व्यक्ति को निद्रा कब आती है, करवटें बदलते रहे। यह दशा भी रुचिकर नहीं हुई, फिर उठ बैठे किंतु जंगल में सन्नाटे और अन्धेरे के अतिरिक्त और क्या था जिसस मन बह-लता, चिन्ता बढ़ती ही गई, अन्त में जब अपनी सीमा पर पहुँच गयी तो खेद ने आक्रमण किया और वह पछताने लगे, "विश्वा-मित्र ! तुझसे भी अधिक अभागा कौन व्यक्ति होगा, एक भ्रम के पीछे तूने सब कुछ खो दिया, ब्रह्मऋषि की पदवी में धरा क्या था

जिसके लिए तूने इतना उपद्रव मचाया, अपने को बिगाड़ा, दूसरे का भी बिगाड़ किया, तू राजा था, बहुत बड़े देश का शासक था, भली भाँति राज्य करता था, धन सम्पत्ति सब कुछ मिली थी, प्रजा शुभ चिन्तक और आज्ञाकारी थी, इस पर तुझको सन्तोष नहीं आया, घर बार से प्रथक हुआ, जंगल-२ मारा मारा फिरा, जप तप में कभी ऊपर चढ़ा कभी नीचे गिरा, मेनिका ने तपस्या भंग की, शकुतला उसका फल हुई, माना तूने फिर बुद्धिमानी की, अपनी त्रुटि को भी सुधार लिया किन्तु क्या हुआ, अपयश का टीका जो माथे पर लगा वह कभी दूर होने वाला नहीं है, वशिष्ठ तुझको ब्रह्मऋषि नहीं कहता और तू यों ही अज्ञान और भ्रम के वश मारा गया। दोनों दीन से गए पाँड़े, हलुआ मिला न मांड़े।

न खुदा ही मिला, न विसाले सनम,
न इधर के हुए, न उधर के हुए।
गए दोनों जहाँ के, काम से हम,
न इधर के हुए न उधर के हुए॥

पछताते पछताते नेत्र भर आए, फिर वह परमात्मा के चरणों में विलख २ कर रोने और उस की अपरम्पार महिमा का गुणगान करने लगे। इस प्रकार पश्चाताप करने से विश्वामित्र की अशान्ति और चिन्ता दूर होती गई और शाँति अंचित आती गयी।

जब अधिक शाँति और चैन मिल गया, दृष्टि उठाकर देखा सामने एक प्रकाशवान मूर्ति दिखलाई दी, वह इनकी कुटी से कुछ दूरी पर ही थी, भली भाँति दिखाई नहीं देती थी, किन्तु अपनी आकर्षण शक्ति से इनको अपनी ओर आने का निमन्त्रण दे रही थी। उसको देखकर उनका हृदय कमल की भाँति खिल

गया, तुरन्त उठ खड़े हुए और उसकी ओर पग बढ़ाया, किन्तु ज्यों-२ आगे बढ़ते जाते थे वह प्रकाशवान मूर्ति भी खिसकती जाती थी, अधिक दूर जाकर वह एक समतल मैदान में खड़ी हो गयी, विश्वामित्र भी उसके निकट पहुँच गये। अब विश्वामित्र और उसके मध्यस्थ बहुत कम फ़ासला था, ध्यानपूर्वक देखने लगे, प्रकाश ही प्रकाश था। प्रकाश के अतिरिक्त और कुछ नहीं था, किन्तु उसकी आकृति और रूप मनुष्य का था। उसकी आँख, नाक, कान और समस्त इन्द्रियों से इन्द्र धनुष के रंगों की मनोहर किरणें चमक २ कर निकल रही थीं और विश्वामित्र को उसी प्रकार खींचे हुई थीं जैसे चुम्बक लोहे को आकर्षित कर लेता है। विश्वामित्र आश्चर्य की मूर्ति बने हुए उसे देखते रहे, ध्यानपूर्वक देखा, बारम्बार देखा, तृप्ति नहीं हुई, मन चाहता था कि वार्तालाप करे किन्तु साहस नहीं होता था, ५-१०-१५ मिनट बीत गए मन में सोचा किस प्रकार पूँछू कि तू कौन है? क्यों आयी है? और क्यों अपनी आकर्षण शक्ति से मुझको यहाँ तक खींच लाई है?

यह विचार मन में उत्पन्न ही हुआ था कि वह प्रकाशवान मूर्ति खिलखिला कर हँस पड़ी उसका हँसना था कि चारों ओर से बिजली के प्रकाश की वर्षा होने लगी। इस प्रकाश में विश्वामित्र ने पृथ्वी को देखा, ऊपर, नीचे चारों ओर सब कुछ दीखने लगा, आँख ऊपर की ओर उठाई गगनमन्डल अर्थात् आकाश के मन्डल खुल गये। सहस्रों लोक लोकान्तर, लाखों तारा मंडल, असंख्य ब्रह्माँड दृष्टिगोचर होने लगे, किन्तु इस प्रकाश के आगे सबका प्रकाश मन्द था, विश्वामित्र के आश्चर्य की सीमा न रही, घबराए, भगवान्! यह क्या रहस्य है? यह क्या वस्तु है?"

विश्वामित्र ने फिर प्रश्न करने का साहस किया, प्रकाश-

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

वान मूर्ति फिर खिलखिला कर हँस पड़ी, तत्पश्चात् प्रकाश का चमत्कार दुगना हो गया। इस बार जो विश्वामित्र ने ध्यानपूर्वक देखा तो इसमें विचित्र रँगों के प्रकाश के साथ एक काले रंग की धार भी चमकती हुई दृष्टिगोचर हुई जिसको देखकर उनका मन घुर्झा गया। ऐसा क्यूँ हुआ? यह बात उनको समझ में नहीं आयी। इस बार उन्होंने मन को रोक कर पूछा, "ऐ प्रकाशवान देव! तू कौन है? और यहां तेरे आने का कारण क्या है? तेरे शरीर से प्रकाश की समस्त धारें प्रसन्नता देती हैं किन्तु इस काली धार से मेरा मन दबा जाता है झटपट बता, देर न कर, वरन् मैं संज्ञाहीन हो कर गिर पड़ूँगा।

प्रकाशवान देव—(हँसकर) विश्वामित्र! क्या तू यथार्थ में मुझको नहीं जानता या यों ही बनाता है।

विश्वामित्र—मैंने तुझको कभी नहीं देखा कैसे कहूँ कि मैं तुझे जानता हूं।

प्रकाशवान देव—खूब! मैं हर समय तेरे साथ रहता हूँ, तेरा जीवन स्वयँ मेरे कारण है, मैंने अपने जीवन से तुझको जीवित कर रखा है और तू कहता है कि तू जानता ही नहीं। क्या यह अज्ञान की बात नहीं है? यदि कोई तुझको अज्ञानी कहता तो तू कभी मानने वाला नहीं था, कौन जाने तू क्रोध में आ जाता और अपनी तलवार से उसका सर भुट्टे की भांति उड़ा देता यह तेरा सम्भव है। ऐ विश्वामित्र! तू वास्तव में अज्ञानी है, अन्धकार में है, मैं तेरे साथ हूँ और तू जानता है। मेरे रहने का जो घर है उसके तीन खण्ड हैं, पांच कमरे हैं, दस द्वार हैं, मेरा घर आनन्द और प्रसन्नता का स्थान है, किन्तु निर्दयी! तूने मेरे घर में रक्त की बूँद छिड़की, सारे घर को अपवित्र कर दिया, इससे मलीनता और सड़ाँद की दुर्गन्ध आने लगी, रहने वालों का जीवन विषैला हो गया, जहाँ शान्ति और आनन्द होना

चाहिए, वहां अब भयानक पशु रहते हैं यह सब तेरी करतूत है, और तू कहता है मैं नहीं जानता।

विश्वामित्र को अत्यन्त आश्चर्य हुआ, "हे भगवान्! यह व्यक्ति क्या कह रहा है, इसका और मेरा साथ कब था, कब मैंने इसके घर में रक्तपात किया, कैसे मेरे कारण इसके रहने का स्थान विषैला हो गया, यह स्वयं मेरी समझ में नहीं आता, इसने मेरे प्रश्न का उत्तर तो कुछ नहीं दिया, उल्टी पहेली बूझने लगा और व्यर्थ मुझको दोषी ठहराता है।

विश्वामित्र इसी सोच विचार में थे कि प्रकाशवान देव फिर बोला "क्यों विश्वामित्र? क्या यह सत्य नहीं है कि तू ने वशिष्ठ पर आक्रमण किया और उसको निर्दोष सन्तान का रक्त पात किया है?"

विश्वामित्र—हाँ यह सत्य है, किन्तु वह डाही और इर्ष्यालू है, मुझको ब्रह्म ऋषि नहीं कहता, मेरा अपमान करता है, इससे तेरा सम्बन्ध है? मैं तेरे घर में पुत्रों का रक्त छिड़कने कब गया था?"

प्रकाशवान देव (हँसकर) वशिष्ठ तुझको क्यों ब्रह्म ऋषि कहे? क्या तू ब्रह्म को जानता है? जब तुझको ब्रह्म की वास्तविकता का पता ही नहीं है, जब तू आत्मदर्शी नहीं है, तो तू ब्रह्म ऋषी कैसे कहाया जा सकता है? बता तो सही तेरे पास इसका क्या उत्तर है?

विश्वामित्र—(हाथ बाँधकर) ऐ प्रकाशवान देव! तू सत्य कहता है मैंने सचमुच त्रुटि की, मैं ब्रह्म ज्ञानी नहीं हूँ। अब सच्ची बात सुनकर पछताता हूं, किन्तु ये बात बता दे कि तेरे तीन खंड, पाँच कमरे और दस द्वार कहाँ हैं, इसको मैंने कभी आँखों देखा और न कभी कानों सुना, रक्त छिड़कना तो एक ओर रहा, मैंने निःसन्देह त्रुटि की, मैं कल ही ऋषी से अपने अपराध की क्षमा

मागूँगा, तू इस पहेली को समझा दे।

प्रकाशवान देव—ऐ विश्वामित्र ! तू मनमत है, गुरुमत नहीं है, जा गुरुमुख द्वारा महावाक्य का श्रवण मनन और निध्यासन कर और वशिष्ठ तुझको मेरा पता बताऐंगे, इतना सुनले कि मैं तेरी आत्मा हूं।

इन अन्तिम शब्दों में क्या जाने जादू था कि विश्वामित्र की आंख खुल गयी, न चौरस मैदान है, न वो प्रकाशमान देव है, वह अपने आश्रम में आसन पर पड़े हुए थे।

विश्वामित्र अपने आसन से दीन और दुखी होकर वशिष्ठ के आश्रम की ओर अग्रसर हुए।

अभी प्रातःकाल मुश्किल से हो पाया था कि वशिष्ठ की स्त्री अरुन्धती जाग उठी और प्रातः के चमकते हुए तारे को देखकर पूछने लगी, "प्राणनाथ क्या संसार में कोई ऐसा पुरुष भी है, जिसके भाग्य का सितारा इसी प्रकार जगत में चमकता है ?"

वशिष्ठ—सुन्दरी ! और तो कोई नहीं है, हाँ ! विश्वामित्र की कीर्ति में पूर्णमासी के चन्द्रमा की चमक दमक दृष्टिगोचर होती है।

अरुन्धती—प्रभू ! आप ऋषि की बड़ाई करते हो, भला उनमें क्या भलाई है ? उन्होंने तो आपके पुत्रों तक को व्यर्थ मार डाला, यह उनकी तपस्या का प्रमाण है !

वशिष्ठ—तू इस समय मायावश होकर वार्तालाप कर रही है। पुत्रों के मरने का विचार छोड़कर देख, ऐसा बल और पराक्रम किसमें है जैसा कि विश्वामित्र में है। उन्होंने अपने विचार से दूसरा ब्रह्माँड बना लिया। आज वह जिसको चाहें आधीन बना सकते हैं, सबको उनका डर रहता है और सब उनका मान करते हैं। जीवन और मृत्यु तो साधारण सी बात है, एक जन्मता है

दूसरा मरता है, कौन किसके पुत्र, कौन किसका पिता, ! इस विचार को सदैव के लिए मन से दूरकर दे, और फिर तुझको आप ही आप विश्वास हो जावेगा कि विश्वामित्र कैसे पराक्रमी और पुरुषार्थी हैं।

विश्वामित्र कुटी के एक कोने में दुबके हुए इन बातों को सुन रहे थे, उनके हृदय को चोट लगी "हाय मैं कैसा पापी हूँ कि इसके पुत्रों को व्यर्थ मार डाला, फिर भी यह मेरा शुभचिंतक है, मुख पर इसने कभी मेरी बुराई नहीं की, पीठ पीछे भी प्रशंसा करता है।" यह सोच और समझकर उन्होंने उसी समय अपने शरीर से समस्त छत्रियों के शस्त्र उतार कर फेंक दिये ! और बिना आज्ञा रोते हुए वशिष्ठ के सम्मुख आये।

बशिष्ठ बोले:—"आइए ब्रह्म ऋषी विश्वामित्र !"

विश्वामित्र:—(आश्चर्यचिन्त होकर) प्रभू मैं जब कभी भी आया, आपने मुझको राजऋषी कहा, मैंने क्रोध में आकर आपको नाना प्रकार की हानि पहुँचायी, आज इस विशेष कृपा का क्या कारण है ?

वशिष्ठ:—(हँसकर) भगवन ! पहले तुममें राज ऋषी के गुण थे तुम सदैव शस्त्रों से सजे रहते थे, मन में राजाओं की भाँति अहंकार था, आज ऐसा भास होता है कि वह अहंकार दूर होगया आत्मा का दर्शन मिल गया। अब आप रजोगुण के ऊपर आगए, समस्त मानसिक तरंगें दब गईं, चित्त की वृत्तियों का निरोध होगया और जिनमें यह गुण हों वह ब्रह्म ऋषी कहलाते हैं, और यही कारण है कि मैंने तुमको ब्रह्म ऋषी कहा है। तुम स्वयं सोच सकते हो, पहले मैं कैसे तुमको ब्रह्म ऋषी कहता जो जैसा होता है वैसा ही कहा जाता है।

वास्तविकता को समझकर विश्वामित्र वशिष्ठ के चरण कमलों पर गिर पड़े और अपने अपराधों की क्षमा मांगने लगे।

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

वशिष्ठ ने उठकर उनको अपनी छाती से लगा लिया, और तत्त्वमसी का उपदेश दिया। फिर कामधेनु गाय अथवा मनोकामनादेवी विश्वामित्र के हाथ आगई।

प्रेम भक्ति की अचरज महिमा, लीला अपरम्पारा।
योगी ध्यानी कोई २ जाने, पाकर गुरु का सहारा॥

—××—

भावम् विश्वासम् फल दायकम्:—

भावना पक्की हो मन में, पक्का ही विश्वास हो।
क्यों न ऐसे जन की, इस रचना में पूरी आश हो॥
आस में विश्वास, अरु विश्वास विश्व की आश है।
जिसमें यह विश्वास है, वह कैसे जग में निराश हो॥

—××—

तीसरा अध्याय

मनोकामनादेवी का दर्शन किस प्रकार हो सकता है? प्राणी इच्छाओं और आवश्यकताओं के चक्कर में ऐसा फँसा हुआ है कि उसकी दृष्टि आत्मा अथवा जात की ओर नहीं जाती यदि उसको इस बात का पता चल जाय कि उसकी इच्छायें और आवश्यकतायें मनोकामना देवी से पूर्ण हो जावेंगी तो वह प्रसन्नता से आत्मा अथवा मनोकामना देवी की ओर आकर्षित हो जावेगा।

मनोकामना देवी कहाँ है?

मनोकामना देवी तुम्हारे मन की गुफा में बैठी हुई है। जागृत अवस्था अर्थात् जागने की दशा में वह प्रकाशवान देवी तुम्हारे शिव नेत्र अर्थात् तीसरे तिल में विराजमान रहती है।

मन्दिर, मसजिद, गिरजा गुरुद्वारे में तुमको यह कहीं भी न मिलेगी, जब मिलेगी इसी शिव नेत्र के मन्दिर में मिलेगी। किसी मुसलमान महापुरुष की वाणी है—

न देखा वह कहीं जलवा जो देखा खानये दिल में।
बहुत मसजिद में सर मारा, बहुत सा ढूंढा बुतखाना॥

जो कुछ लोक और परलोक का कार्य होता है यह इसी शिव नेत्र के सहारे होता है। शिव नेत्र से जब सुरत की धार कंठ चक्र, हृदय चक्र, नाभि चक्र, इन्द्रिय चक्र और गुदाचक्र में आती है तब यह चक्र अपने २ कार्य को करते रहते हैं। इस प्रकार समस्त शारीरिक कार्य पूर्ण होता रहता है और लोक का काम होता है। शिव नेत्र से जब सुरत ऊपर के चक्रों अर्थात् सहस्र दल कमल और त्रिकुटी आदि की ओर जाती है तो जीवन आकाशी बन जाता है और आत्मिक तथा परलोक का कार्य स्वाभाविक होने लगता है। यह चक्र वास्तव में ब्रह्मांडों के नकली नमूने हैं।

मनुष्य समस्त ब्रह्मांड का खुलासा है, जो ऊँचे और नीचे समस्त स्थान ब्रह्माँड में है वह सब मनुष्य के शरीर में विद्यमान हैं, अन्तर केवल पैमाने का है, ब्रह्मांड बड़ा संसार है और शरीर छोटा, जो शक्तियां ब्रह्मांड में कार्य कर रही हैं वह सब शरीर में विद्यमान हैं। इस पर संसार के बड़े २ धर्म, पंथ, वेदाँत, बुद्ध धर्म, सन्तमत और सूफ़ीमत सभी इससे सहमत हैं।

शिव नेत्र से नीचे के स्थान मध्यम और शिव नेत्र से ऊँचे के स्थान उत्तम हैं। मध्यम स्थानों में माया प्रबल और आत्मा निर्बल है। उत्तम स्थानों में आत्मा प्रबल और माया निर्बल है, इस कारण आत्मा अथवा मनोकामना देवी की प्राप्ति उत्तम स्थानों में हो सकती है।

अब प्रश्न यह है कि उत्तम स्थान अथवा ब्रह्माँड में पहुंच कैसे हो ? ब्रह्माँड में जाने का सरल, सुगम, शीघ्र और निश्चित उपाय शब्द है। यह अनहद शब्द अथवा चेतन की धार तथा प्राकृतिक राग प्रत्येक समय हर घट में सुषुम्ना नाड़ी के भीतर गूँजता रहता है। यही शब्द जीवन का श्रोत है। यही ब्रह्मांड का परम तत्व है। इसीसे समस्त सुरतों की उत्पत्ति हुई है। इस आत्मिक और आकाशीय राग की श्रेष्ठता का वर्णन करना असम्भव है। सूफ़ीयों के सरताज मौलाना रूम वर्णन करते हैं यदि मैं तुमको इन रोगों का तनिक भी वृतांत सुनाऊँ तो मुर्दे क़ब्रों से बाहर निकल आवेंगे।

परम सन्त हुजूर राय सालिगराम साहिब की वाणी है—

घट में जो उठती है रागों की सदा।
जो कहूं मैं तुझसे हाल उसका ज़रा॥
जान मुर्दों की उठे क़ब्रों से जाग।
ऐसा अन्तर का है बाजा और राग॥

यह आत्मिक शब्द कब सुनने और देखने में आता है ?

जब आँख, कान और जिभ्या बाहर मुखी से अन्तर मुखी हों।

परम सन्त कबीर साहब वर्णन करते हैं—

आंख, कान, मुख मूँदकर नाम निरञ्जन लेय।
भीतर के पट तब खुलै जब बाहर के देय॥

गुरू नानक साहब की वाणी है—

तीन बन्द लगाय कर, सुन अनहद टंकोर।
नानक सुन्न समाध में, नहीं साँझ नहीं भोर॥

मौलाना रूम वर्णन करते हैं—

आँख, कान और जिभ्या को बन्द करो, यदि इस पर

भी मालिक का रहस्य न ज्ञात हो तो फिर मुझ पर हँसो ।

इस आत्मिक और आकाशीय शब्द के सुनने और उसके प्रकाश देखने का नाम संतमत में सुरत शब्द योग, अनहद योग और सहज योग है और सूफ़ी मत में इसका नाम सौते सरमदी, शग़ले नसीरा और सुल्तानुल अज़कार है वेदों और उपनिषदों ने इसे श्रुति मार्ग कहा है। सुरत शब्द योग अभ्यास को स्त्री, पुरुष, बच्चा, युवक, वृद्ध, अपढ़, विद्वान सभी कर सकते हैं।

सुरत शब्द योग किया किस तरह जाता है, ये योग करने का मार्ग है, जहाँ तक लिखने का सम्बन्ध है इसका वर्णन इस प्रकार है—चित्त की वृति को समेट कर शिव नेत्र में स्थित करो, यह स्थान दोनों भवों के मध्य में है। यहाँ तुमको प्रकाश दिखाई देगा और उसीके ऊपर से घनघोर शब्द की ध्वनि प्रकट होगी, इसमें चित्त को वृति को लगा दो, आँख, कान, जिव्हा को बन्द कर दो इसीसे लौ लगाओ, कुछ दिन इसका अभ्यास रहे, जब सुरत भली प्रकार सिमटने लगे, गगन मंडल का नाका दृष्टि गोचर होगा, सुरत आप ही आप उस ओर शनैः शनैः चलेगी और जिस स्थान से उसके ऊपर ध्वनि आती है वहां पहुँचेगी। शिव नेत्र के निकट ही सहस्र दल कमल है! इसके तनिक ऊँचे त्रिकुटी स्थान है जो वेद वाणी का स्रोत है। यहां एक महा प्रकाशवान सूर्य दृष्टिगोचर होगा जो इस त्रिलोकी का मालिक है और जिसे ओंकार भी कहते हैं! सूफी मौलाना रूप का कथन है:— मनुष्य में सूर्य छिपा हुआ है, इसको समझ, ईश्वर भली भाँति जानने वाला है!

परम संत रायबहादुर सालिगराम साहब की वाणी है:—

भान रूप मालिक सुन भाई, नर देही में रहा छिपाई ॥

इस सच्चिदानन्द सर्व शक्तिमान परमात्मा का दर्शन करने से आत्मा शरीर के बन्धन से मुक्त होकर अपने आत्म रूप और

प्रकाशवान स्वरूप में आजायगी, जो सम्पूर्ण बल, ज्ञान और सुख है। फिर मनोकामना देवी पूर्ण रूपेण तुम्हारे हाथ में आ जायगी।

नोट—अभ्यास करने का उचित समय प्रातः और सन्ध्या है। अभ्यास उतनी देर करना चाहिये, जितनी देर आनन्द आये तथा अच्छा प्रतीत हो। अभ्यास के लिये कुक्कुड़ और सिद्ध आसन अधिक उचित है। आरम्भ में सुरत के शिवनेत्र में एकत्रित होने से वहां कुछ हलका दर्द सा मालूम होता है, किन्तु उस प्रसन्नता से जो अभ्यासी को प्राप्त होती है और जो संसार की समस्त प्रसन्नताओं से बढ़कर है, तुरन्त इसका बदला हो जाता है। इसके अतिरिक्त दर्द भी थोड़ी देर में आप ही आप जाता रहता है। आठ दश दिन के पश्चात जब अधिक ज्ञान, बल और प्रसन्नता प्रतीत होने लगे और उपरोक्त बात का निश्चय हो जाय तो सुरत शब्द योग की क्रिया को किसी पूर्ण पुरुष अथवा किसी महात्मा से सीखना आवश्यक है। सुरत शब्द योग के ज्ञाता राधास्वामी मत अथवा संतमत में विद्यमान हैं।

प्राणी जो कुछ खाता है उसके सूक्ष्म भाग से मन बनता है (शाकाहारी भोजन) अन्न, शाकपात आदि से शान्त मन बनता है। माँसाहारी भोजन से चञ्चल मन बनता है। चञ्चल मन वाला चाहे कितना ही विद्वान क्यों न हो, कभी अन्तरमुखा नहीं हो सकता, न आत्म चैतन्यता अथवा मनोकामना देवी उसके भाग में आ सकती है। इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि अभ्यासी का भोजन शाकाहारी हो।

चौथा अध्याय

मनोकामना देवी की सहायता से आवश्यकतायें किस प्रकार पूर्ण हो सकती हैं ?

प्रत्येक कार्य चाहे शारीरिक, मानसिक, आत्मिक, जातीय हो या देशीय, उसके पूर्ण होने का महत्व मन की एकत्रित शक्ति और सूझबूझ पर है। पिंड में मन की शक्ति बिखरी हुई और सूझबूझ की कमी है। ब्रह्मान्ड में मन की शक्ति एकत्रित और सूझबूझ की अधिकता है। इसलिए हमारा प्रत्येक कार्य उस समय सफल हो सकता है जब हमारा निवास ब्रह्मान्ड अथवा आत्मा में हो। हमारी प्रत्येक असफलता का यह कारण नहीं है कि प्रकृति अथवा ईश्वर को हमसे शत्रुता है। ईश्वर अकर्ता है, वो किसी के काम को बिगाड़ता व बनाता नहीं है, हम जैसा करते हैं वैसा फल पाते हैं। ईश्वर को इन बातों से क्या प्रयोजन।

बेनियाज़ी ब्रान है उसको खुदा है बेनियाज़।
ज़ुल्म और मक्रो दग़ा का वह नहीं है कारसाज़ ॥

कर्म प्रधान विश्व कर राखा। जो जस कीन सो तस फल चाखा॥

चूँकि हमको समझ और ज्ञान नहीं है इसलिए अन्धों की भांति अनाप शनाप कार्य करते हैं और अपने मनोरथ में असफल रहते हैं। जब हमको मनोकामना देवी अर्थात् समझ बूझ, ज्ञान और बल मिल गया, फिर हम जिस कार्य अथवा आवश्यकता में हाथ लगायेंगे वो पूर्ण हो जायेगा!

कहावत है कि राजा भोज के दरबार में तीन पण्डित रहा करते थे, जिनकी स्मरण शक्ति बहुत तीव्र थी, वह यदि एक बार जिस श्लोक को सुन लेते तो वह दुहराकर राजा से कह दिया करते कि यह हमारा श्लोक है। उनका सिक्का दरबार में जमा हुआ था और किसी पण्डित की नहीं चलती थी। अक्समात कालिदास का आगमन हुआ, उसने इनके वृतान्त सुने, दरबार में जाने का साहस नहीं हुआ, अन्त में किसी स्त्री ने उनको शिव नेत्र में मानसिक शक्ति के एकत्रित करने का भेद सिखाया और दोनों भौंओं के बीच में सिंदूर का टीका लगाकर कहा कि बात

तुमको आप ही आप नई २ बातें सूझेंगी और तुम पन्डितों को जीत सकोगे। कालिदास इस रूप में दरबार में उपस्थित हुआ। सबकी दृष्टि उसके माथे के टोके पर पड़ी और चूँकि इस स्थान पर विचारों के एकत्रित करने का साधन सीख चुका था, उनका ध्यान आप ही आप इस ओर आकर्षित हुआ जिसके कारण उनकी मानसिक शक्तियों का बहुत कुछ भाग मिल रहा है और उसने श्लोक की एक २ कड़ी सुनाकर पण्डितों से पूछा "क्या ये तुम्हारे श्लोक हैं ?" चूँकि एक कड़ी से मतलब हल नहीं होता था, उनको मजबूरन इन्कार करना पड़ा। उनके इन्कार पर फिर उसने दूसरी कड़ी सुनाई, कविता की बन्दिश ऐसी अनोखी थी कि वाह वाह की ध्वनि उच्च स्वरों में गूँजने लगी और इस प्रकार कालिदास ने उस दरबार में अपना सिक्का जमा लिया।

इस युग में प्रत्येक प्राणी महात्मा गाँधी को जानता है। वह अत्यन्त निर्बल और शक्तिहीन थे। वह कोई राजा महाराजा नहीं थे फिर उनमें कौनसा गुण ऐसा था जिसने उनको अति उत्तम और अतिप्रिय बना रक्खा था ? ये केवल आत्म-शक्ति और मनोकामना देवी का ही चमत्कार था। उनका निवास आत्मा अथवा ब्रह्माँड में था, उनका जीवन आकाशीय था, वह आकाश-वाणी को सुना करते थे, विचार उच्च आकाशीय थे, यही कारण था कि उन्होंने समस्त संसार को प्रभावित कर लिया था।

उलूउल अज़्म दानिशमन्द, जब करने पै आते हैं।
समन्दर फाड़ते हैं, कोह से दरिया बहाते हैं॥
हो इरादा मुस्तक़िल, यकसू रहे दिल का ख़्याल।
फिर नहीं हरगिज़ कभी, कोई यहाँ अमरे मुहाल॥
ज़िन्दगी सादा रहे, ऊँचे रहें तेरे ख़्याल।
उ ल्द हासिल होगा, तुझको आप इन्सानी कमाल॥

पाँचवा अध्याय

देवासुर संग्राम–वृहदारण्योपनिषद में वर्णन है:–

प्रजापति की सन्तान दो प्रकार की थी, देवता और राक्षस, इनमें से देवता छोटे और राक्षस बड़े थे। इनमें अनबन रहती थी, देवताओं ने सोचा यदि (उदगीत) ओ३म् का राग गाया जाय तो वह राक्षसों को जीत सकेंगे। उन्होंने जिभ्या से पूछा, "क्या तू हमारे लिए उदगीत गायेगी !" जिभ्या ने कहा, "हां, उसने उनके लिए उदगीत गाया, किंतु अच्छा अच्छा अपने लिए गाया, बुरा बुरा देवताओं के लिए। राक्षसों ने सोचा, "निस्सन्देह इस गाने से यह हमको दबालेंगे" इसलिए उन्होंने आक्रमण करके जिभ्या को पाप से छू दिया, नष्ट भृष्ट हो गई और देवता हार गये। तब देवताओं ने एक एक करके नाक, आंख, कान और मन से उदगीत गवाया, किंतु इन सब में स्वार्थ था इन्होंने अच्छा २ अपने लिये गाया, और बुरा बुरा देवताओं के लिये। राक्षसों ने उनके भी निर्मल अंगों को देख कर उन्हीं से उनको दबा दिया और वह सब हार गये। तत्पश्चात देवताओं ने प्राण से उदगीत गवाया। चूँकि प्राण में स्वार्थ नहीं था इसलिये जब राक्षसों ने उस पर आक्रमण किया तो जिस प्रकार मिट्टी का डेला पत्थर से लगकर चकनाचूर हो जाता है ऐसे ही वह राक्षस चूर चूर होकर चारों ओर गिर पड़े तब देवताओं की विजय और उन्नत हुई।

यह उदगीत अथवा ओ३म् का राग शब्द योग अथवा अनहद योग ही है।

महर्षि वाल्मीकि

रत्नाकर जाति का भील और भयानक लुटेरा था। उसने असंख्य व्यक्तियों की जान ली और लाखों की धन संपति छान ली। नारद मुनि ने उसको राम नाम की दीक्षा दी, किंतु वह एक

मूर्ख और पापी जीव था। सीधा नाम न ले सका, उलटा नाम जपने लगा। गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज अपनी रामायण में वर्णन करते हैं:—

उलटा नाम जपत जग जाना। बालमीकि भये बृह्म समाना॥
कहाँ लग कहूं नाम प्रभुताई। राम न सकहि नाम गुण गाई॥

यह उल्टा नाम वास्तव में मालिक के ध्वनात्मिक नाम से तात्पर्य है जिसकी ध्वनि और धार हमारे घट में सीधी चली आ रही हैं और हम उसीमें अपनी सुरत को पिरोकर अपने मस्तिष्क की ओर चलते हैं यह जाप और उल्टा नाम सुरत शब्द योग ही है।

इस योगाभ्यास से उसके लुटेरेपन की भावनायें प्रेम और सत्यता की भावनाओं में परिवर्तित हो गईं और उसका नाम बालमीकि ऋषि रक्खा गया। बालमीकि संसार के सर्व प्रथम कवि हुए हैं, सबसे पहिले उन्होंने ही कविता की नींव डाली। धर्म के साथ ही साथ वह राजनीति और सामाजिक व्यवहार के भी बहुत बड़े ज्ञाता हुए हैं। महर्षि बालमीकि की पुस्तक बालमीकि रामायण इस पर अधिक प्रकाश डालती है। यह वह पुस्तक है जिसने संकट के समय सदैव हिन्दू जाति की रक्षा की है और अब तक भी हिन्दुओं में रामायण ही का प्रदान किया हुआ जीवन है।

सम्राट अशोक

सम्राट अशोक आरम्भ में निर्दयी था, साधु, महात्मा और ब्राह्मण तक को फांसी पर चढ़ा दिया करता था। उसका आचरण भी ठीक न था। पन्डित शिशुपाल मन्त्री न्यायालय ने एक क़त्ल के अपराध में उसको फांसी का आदेश दिया और अशोक जैसी आकृती की मूर्ति को फाँसी पर लटकाया गया।

इस निर्दयी अशोक को बुद्ध धर्म की दीक्षा दी गई, बुद्ध धर्म में सुरत शब्द योग का मेल विशेषतः के रूप में रहा है। थियोसोफ़ीकल सोसायटी की संस्थापिका मैडम ब्लियूटस की देवो ने "वाइस आफ़ दी साइलैंस" मौन ध्वनि नामक पत्र का बौद्धों ही की पुस्तकों से छाँट को हुई है। बुद्ध धर्म ने अशोक की काया पलट कर दी, उसमें बुद्ध भगवान की शिक्षा का निचोड़ "अहिंसा परमो धर्मः" भली प्रकार आ गई, वह धर्मात्मा बन गया और विश्वप्रेमी के नाम से प्रसिद्ध हुआ। विश्वप्रेमी सम्राट अशोक न केवल अपने युग का अपूर्व सम्राट हुआ, बल्कि उस समय से लेकर आज तक संसार में इस मानवता का सम्राट किसी देश ने नहीं उत्पन्न किया। यदि किसो सम्राट के न्याय के विषय में यह उदाहरण सच हो सकता है कि उसके राज्य में शेर और बकरी एक घाट पानी पीते थे तो वह विश्वप्रेमी सम्राट अशोक का शासन था। इस प्रकार के शासन ने समस्त भारतवर्ष को स्वर्गधाम बना दिया था। विश्वप्रेमी सम्राट की बड़ाई केवल भारतवर्ष ही तक सीमित न थी बल्कि उसका डण्का समस्त संसार में बजता था, क्योंकि संसार का कोई देश ऐसा न था जहाँ उसके दूत भिक्षुओं ने जाकर धर्म का प्रचार न किया हो और थोड़ा बहुत धर्म का रिवाज न हुआ हो। एक बार विश्वप्रेमी सम्राट अशोक को समाचार मिला कि लङ्का में कोई भिक्षु कार्य नहीं कर सकता, उसने अपने राजकुमार महेन्द्र और राजकुमारी महेन्द्री को भिक्षु और भिक्षुनी बनाकर लङ्का को भेज दिया जहां वह समस्त आयु धर्म का प्रचार करते रहे। यह सब चमत्कार मनोकामना देवी ही का था।

परम सन्त कबीर साहब

कबीर साहब जाति के मुसलमान जुलाहे थे, पिता का

नाम तूरा और माता का नाम नेमान था। कबीर साहब का प्राकट्य होने से पूर्व हिन्दुओं की क्या दशा थी, निम्नलिखित घटनाओं से ज्ञात होगा।

ये वृतान्त मुसलमान लेखकों की पुस्तकों से लिए गये हैं। ग़यासुद्दीन का उल्लेख है, उसने रानामल भट्टी की सुन्दर कन्या का हाल सुनकर उसको बहुत सताया। एक बार जैलममेर में आठ सहस्र पुत्रीयां एक साथ उसके आक्रमण के समय चिता पर बैठ कर जल गईं। दूसरी बार इसी प्रकार के जूहर के समय चौबीस हजार स्त्रियों ने अग्नि में जलकर अपने पतिव्रत धर्म को बचाया। फ़ीरोज़शाह के समय में कर की वह भरमार थी कि व्यक्ति कठिनता से जीविका पालन कर सकते थे।

तैमूर का वृतांत सुनिये—उसने दयालपुर के पाँच हज़ार, अयोध्या के चौदह हज़ार, काशी के तीस हज़ार हिन्दुओं को केवल मूर्ति पूजा के अपराध मे मरवा दिया था. इन सब मृतक व्यक्तियों के पुत्र, पुत्री और स्त्रियों को दास और दासी बनाया। भट्ट नीर के नगर में एक अवसर पर जब कर की प्राप्ति में तकरार हुई तो उसने इकत्तीस हज़ार हिंदुओं को घर में बन्द करके आग लगवा दी। इनमें से दस हज़ार व्यक्ति भाग निकले। इनको पकड़वा कर निर्दयता से मरवा दिया। लोग जीवन से तङ्ग आ गये थे। कितने ही व्यक्ति पहले अपने बालकों को विष खिलाकर फिर आत्म घात कर बैठे थे। उसने एक लाख पच्चीस हज़ार तुर्की सैनिक ईसलिये रखे थे कि हिन्दुओं की लूट कर और संकट पहुंचाये! कुछ दिवस पश्चात् उनके पास इतनी सम्पति एकत्रित हो गई कि फिर वे नौकरी छोड़ छोड़ कर अपने देश चले गये। वो कहा करता था, कि मैं राज्य करने को नहीं आया हूं, केवल हिन्दुओं को नष्ट भृष्ट करने को आया हूं, उसने सहस्रों नहीं, वरन् लाखों हिन्दू मरवाये। मेरठ के आक्रमण के समय कितने

मन्दिर तोड़ डाले। हिन्दुओं को इस्लाम धर्म अपनाने से सदैव इन्कार था, बलपूर्वक उनके मुख में गाय का माँस डलवा कर दुर्गत करवाया करता था। तुज़ाक बाबरी में लिखा है—जो हिंदू पकड़ कर युद्ध में पकड़ कर आते थे, वह सम्राट के सम्मुख क़त्ल किये जाते थे। एक बार इतने व्यक्ति मारे गये कि सम्राट को अपने बैठने का स्थान बदलना पड़ा। भारतवर्ष में जिन २ स्थानों पर ऊजड़ टीले दृष्टिगोचर होते हैं, वह इन्हीं समय के अत्याचारों की कहानियाँ हैं। ये सब नगर बसे हुए थे, अब ऊजड़ हैं।

भारतवर्ष के प्राचीन नगर किस प्रकार बसे हुए थे, एक लेखक लिखता है—कन्नौज में बीस हज़ार केवल तमोलियों की दुकानें थीं, शाहबुद्दीन ग़ोरी ने उसकी ईंट से ईंट बजा दी। वह पहला सा कन्नौज अब नहीं रहा।

मथुरा पच्चीस वर्गमील में बसा हुआ था, महमूद ग़ज़नवी ने उसको उजाड़ कर पृथ्वी से मिला दिया। महमूद का मीर मुंशी एक मन्दिर के सम्बन्ध में लिखता है ऐसे मन्दिर के बनवाने में करोड़ों दीनार व्यय हुए होंगे, इसकी विशालता वर्णन नहीं हो सकती। महमूद शाह के हाथ में यह मन्दिर क्या लगा, धन सम्पत्ति की खान मिल गई। सेना ने इतना माल लूटा, कि सबको तृप्ति हो गई।

भिलसा का मन्दिर एक सौ पचास गज़ ऊँचा और आधा कोस चौड़ा था, कई वर्षों में करोड़ों रुपया खर्च करके बनाया गया होगा, इसको शामसुद्दीन ने धूल में मिला दिया। अमीर खुसरू लिखते हैं—इस मन्दिर के तोड़ने में लाखों व्यक्ति मारे गये, रक्त की नदियाँ बह निकलीं, करोड़ों की जवाहरात हाथ लगी, दीवारों की कारीगरी में जवाहिरात और बहुमूल्य पत्थर लने थे। इसके स्थान पर मसजिद बनाई गईं, जो अब तक विद्यमान हैं।

मुहम्मद मूसा अपनी इतिहास सिंध में लिखता है:— मुहम्मद कासिम ने जब शमशाबाद को उजाड़ा तो लाखों हिन्दुओं को जानसे मरवा दिया। बीस हजार हिन्दू दासों की दशा में बग़दाद भेजे गये। उनके साथ दो युवतियाँ थीं जो राजकुमारी थीं, जब बग़दाद के ख़लीफ़ा ने इनको महल में रखने का इरादा किया, युवतियों ने कहा, "हज़रत हमको मुहम्मद क़ासिम ने अपवित्र कर दिया है, महल में रहने के योग्य नहीं हैं।" खलीफ़ा ने क्रोध में आकर आदेश दिया "मुहम्मद क़ासिम की त्वचा जीवित खींची जाय और उसको बेल की खाल में बन्द करके भेज दिया जाय"। ऐसा ही हुआ। इस दृश्य को देखकर युवतियाँ खिल खिलाकर हँस पड़ीं। "हज़रत ! यह क्या किया ? हमको तो धोके और चाल से अपने पिता के घातक को कत्ल कराना था, किन्तु आपने बुद्धिमानी से काम नहीं लिया, उसने हमको अपवित्र नहीं किया था।" सम्राट अत्यन्त क्रोधित हुआ और उनको भी उसी समय मरवा डाला।

मीर मासूम अपनी पुस्तक में लिखते हैं—सिन्ध देश के भाटिया लोवाना, जाट, कोरियों आदि के लिये खलीफ़ा उमर का आदेश था, 'न अच्छे वस्त्र 'पहिनें, न अच्छा भोजन खायें, न घोड़ों पर सवार हों, न दुमंजिले मकान बनवालें, सुन्दर युवक और युवतियों को घर में न रक्खें, या तो सम्राट के भेट करदें, अथवा किसी अन्य मुसलमान को देदें।"

इतिहास चचनामा में लिखा है कि जब सिंध देश का किला राडड़ मुसलमानों के हाथ आया, वहां तीन हजार हिन्दू स्त्री पुरुषों को कैद बन्दी करके दास व दासी के रूप में खलीफ़ा बलोद के पास बग़दाद भेजा गया। इनमें से कुछ तो बेचे गये और कुछ मुसलमानों को पारितोषिक में दे दिये गये। खलीफ़ा बलोद ने बग़दाद से मुहम्मद क़ासिम को लिखा, "तुमसे जहाँ

तक हो सके काफ़िरों को चैन न लेने दो, जैसे बने वैसे मुसलमान बनाओ, यदि न मानें तो क़त्ल कर दो ।" उसने ऐसा आदेश पाकर दीपालपुर नगर के समस्त बड़े २ मन्दिर गिरवा दिये और लाखों रुपये की सम्पति बग़दाद भेज दी ।

तैमूर शाह अपने रोजनामचे में लिखता है, "भारतवर्ष में मेरे आने का तात्पर्य यह है कि सर्व प्रथम हिन्दुओं को मुसलमान बनाया जावे, द्वितीय इनका धन सम्पत्ति लूटकर मुसलमानों को दिया जाय" मुसलमान लेखक लिखते हैं कि जब तैमूर को पता लगा कि समस्त बन्दी काफ़िर हैं तो इनमें से एक लाख को चुनकर क़त्ल कर दिया ।"

"जुल्म की इन्तहा होकर करम की इब्तदा होगी"

इन प्रबल, नीच और निकृष्ट भावनाओं और अत्याचारों का मुख फैरना सुगम कार्य न था। दयासागर कबीर साहब को हिन्दुओं पर दया आई, उन्होंने अपना ईश्वरीय नाद बजाना आरम्भ किया। वह ईश्वरीय नाद क्या था? वह सुरत शब्द योग का अभ्यास और प्रचार था ।

आधी साखी कबीर यह कोटि ग्रन्थ कर जान ।
यसत्नाम जग झूँठ है, सुरत शब्द पहचान ।।

जो बात संसार के स्वभाव के विरुद्ध होती है, संसार उसका विरोध करता है । यही व्यवहार कबीर साहब के साथ किया गया । नाना प्रकार के अन्याय किये गये, यहां तक कि लोदी सिकन्दर सम्राट ने तो उनके जीवन को ही समाप्त करना चाहा, किन्तु कबीर साहब के सामने उसकी एक न चली, और अन्त में उनको इनका लोहा मानना पड़ा और इनसे क्षमा-याचना की ।

इस आकाशवाणी अर्थात ईश्वरीय धुन को सुन कर हिन्दू मुसलमान जिनमें अध्यात्म का भाव था, आपके अनुयायी हुऐ और फिर उनमेंसे गुरुमुख शिष्य समस्त भारतवर्षमें सुरत शब्द योग का

प्रचार करने के लिये नियुक्त किये गये। इस प्रकार समस्त देश में अध्यात्म की बाढ़ आगई और मलीन भावनायें दब गईं जिससे हिन्दू मुसलमान में सच्चा मेल हो गया और सुख शान्ति आगई!

सुख देवे दुख को हरे, दूर करे अपराध।
कह कबीर वह कब मिलें, परम स्नेही साध॥

सन्त शाह कमाल

शाह कमाल कबीर साहब के पुत्र थे, बाल्यावस्था में लँगोटी बाँधनी नहीं आती थी, सदैव खुल जाया करती थी। कबीर साहब ने हँसकर कहा, "पुत्र! तनिक कस कर लगोंटो बाँध लो।" आपने पूछा, सचमुच अथवा झूठमूठ।" कबीर साहब बोले, "सच-मुच झूठमूठ कैसी।" फिर आपने लंगोटी कस कर बाँध ली और समस्त आयु क्वारे ब्रह्मचारी बने रहे और विवाह का नाम तक न लिया।

आप मुसलमानों की साधारण एकता की प्रशँसा और हिन्दुओं की छूतछात और जाति पांति की बहुधा शिकायत करते रहते थे।

आपने संतमत का प्रचार बम्बई और राजपूताने की ओर किया और समस्त आयु उन्हीं स्थानों के भ्रमण में समाप्त कर दी। आप किस कोटि के महापुरुष थे, वह आपको निम्नलिखित वाणी से ज्ञात होगा:—

(१) अजर अमर अविनाशी साहब, नरदेही क्यों पाया।
इतनी समझ बूझ नहीं मूरख, आवे जावे सो माया॥
२—गाँठ खुली नहिं जड़ चेतन की, ज्ञान कथे बे अन्ता।
सत्य असल की खबर न पाई, जाने न सत असंता॥
३—सुख नहीं दौलत माल खज़ाना, सुख नहीं बाद विवाद।
सुख है साधु संत की पूंजी लागी सुन्न समाध॥

४—मन दर्पण निज सूरत देखा, देखा सकल पसारा।
आपा आपा जान सब जाना, जाना सार असारा॥
५—ज्ञानी ज्ञान कथै निस वासर, वह तो अति अज्ञानी।
निजमन की कुछ कुछ नहीं बाकी, आठ पहर अभिमानी॥
६—साखी सुनली मरम न पाया, खुले न नैन हिये के।
सुख आनन्द नेंक नहीं पाया, धिग नर जन्म जिये के॥
७—राजा दुखी दुखी वनवासी, दुखी रंक विपरीती।
गुरू कृपा भई साधु सुखी भये, मन चचंल को जीती॥
८—राम नाम भज निस दिन बन्दे, और भरम पाखन्डा।
बाहर के पटदे मेरे प्यारे,खुले सकल ब्रह्मण्डा॥
९—दास कमाल कबीर का बालक,गुरू का निज कर प्यारा।
शब्द बान की चोट लगी जब, पाया सत करतारा॥

परम संत गुरू नानक साहब

जाति के वेदी खत्री थे। जो कार्य भारतवर्ष में कबीर साहब ने किया वही कार्य पंजाब में नानक साहब ने किया। आपसे जनसाधारण सभी लाभान्वित होते थे, हिन्दू मुसलमान का कोई भेद भाव न था, दोनों ही इनके शिष्य थे। इनका मुसलमान शिष्य मर्दाना तो समस्त आयु इन्हीं के साथ रहा। ईश्वरीय नाद सुरत शब्द योग था। आपकी वाणी है—

जैसे जल में कमल निरालम, मुर्गाबी निशानिये।
सुरत शब्द भव सागर तरिए, नानक नाम बखानिये॥

एक बार आपको बाबर सम्राट ने बन्दी बना लिया, किन्तु जब उसको इनकी महानता का पता चला तो न केवल इनको मुक्त कर दिया बल्कि इनका विश्वासी हो गया और इनके चरण कमलों में झुक गया।

गुरु नानक साहब ने समस्त पंजाब, भारतवर्ष तथा अन्य

घट में जब शब्द की धुन प्रगटी, फिर और रागिनी गावत को।
अपनी सतगुरु से लगन लगी, फिर दूजा देव मनावत को ।।

अपनी बात ग़ज़ल १

आँखों में मेरे तू है, दिल में ख्याल तेरा।
मेरा नहीं यहाँ कुछ सब कुछ दयाल तेरा ।।
दिल का मेरे शिवाला, सब मंदिरों से आला।
मैं देखता हूं उसमें, अकसर जमाल तेरा ।।
रोकर जहां बुलाया, फिर वहाँ ही दौड़ा आया।
मैं देखकर हूँ हैराँ, रुख़ा लाजवाल तेरा ।।
लुत्फ़ो करम से तेरे, सब दुख हैं दूर मेरे।
तारीफ़ के हैं क़ाबिल, मुरशिद कमाल तेरा ।।
हम जहाँ भी घूमते हैं, मस्ती में झूमते हैं।
अब भी है कोई बाक़ी, "खुशदिल" सवाल तेरा ।।

अपनी बात ग़ज़ल २

ज़रा से अरसे में हमने अपना,
कमाल देखा ज़वाल देखा।
मिटे हैं हिर्सो हबिस के झगड़े,
अब अपने दिल को संभाल देखा।
कभी थी शादी कभी ग़मी थी,
कभी थी बेशी कभी कमी थी।

घड़ी में रन्जो मलाल देखा।
उसी का हमने किया भरोसा,
मिला सफ़र को लिया वह तोशा।
उसी से लौ अब लगी हुई है,
उसी का दिल में ख्याल देखा।
जो रोया यहाँ पर वही हँसेगा,
हुआ जिसे बहम वही फँसेगा।
खु.दा बचाये हर इक बला से,
अजीब दुनियाँ का जाल देखा।
कभी थे पूरब कभी थे पच्छिम,
कभी थे उत्तर कभी थे दक्खिन।
खु.शी मिली है अब घर में आकर,
अब तो "खु.शदिल" निहाल देखा।

❀ शेर ❀

दिल सोंप दे उसी को, कि जिसकी यह चीज़ा है।
फिर देखना 'खु.शदिल', कि तू हर दिल अज़ीज़ा है॥

देशों, मक्का शरीफ़, मदीना, मुबारक आदि को अपने उपदेश से लाभ पहुँचाया। पन्जाब में दूसरे प्रान्तों के अपेक्षा जो जीवन चिन्ह अधिकतर दृष्टिगोचर होते हैं उसका कारण आपकी अध्यात्मिक शिक्षा है।

राधास्वामी परम दयाल के चरण कमलों में बन्दना

(१) मुझे और न कुछ भी ध्यान रहे, मेरे मन में आप समा जाओ।
मैं काल कर्म का मारा हूं, मेरी बिगड़ी नाथ बना जाओ॥
(२)मेरा मन मूरख अति चन्चल है,इसे ऐसा अब तो चितादो तुम।
जब चाहूँ आपके दर्शन हों, कोई ऐसा मन्त्र सिखा जाओ॥
(३) संसार महा सुखदाई हो, यहाँ सब कोई भाई भाई हो।
और तुम से ही आश लगाई हो, सब बिगड़े काम बना जाओ॥
(४) मेरा काम क्रोध मद लोभ सभी, रहे आपके चरणों में अर्पण।
मेरी वाणी मीठी हो निसदिन,मुझे प्रेम की राह दिखा जाओ॥
(५) मुझे नाम दान प्रदान करो, मेरा सब विधि से कल्यान करो।
मैं दीन हीन अपराधी हूँ, राधास्वामी पार लगा जाओ॥
गुरु सुन्दर रूप बसा मन में, मेरे मन भीतर अमृत बरसे।
गुरु करुण सिन्धु दयाल गुरू, मोहि काढ़ लिया यम के घर से॥
गुरु अद्भुत रूप बसा मन में, अब और से ध्यान लगावत को।
जब अन्तर बाजे बाज रहे, फिर बाहर साज सजावत को॥

परमदयाल फ़क़ीर संदेश (वचन-विलास)

एक सतसंग में दो चार व्यक्ति थे उनमें से एक व्यक्ति ने प्रश्न किया "आप अपने आपको दयाल और गुरुओं का गुरू कहते

फ़क़ीर—नहीं ! मैं सत्य कह रहा हूं कि मैं दयाल का रूप हूँ और गुरुओं का गुरू हूँ ।

व्यक्ति—आपके शब्द उचित नहीं हैं। इस प्रकार का अहङ्कार ठीक नहीं है ।

फ़क़ीर—खेद है । मैं अहङ्कारी नहीं हूँ वरन् आप सज्जन जो मुझे अहङ्कारी समझते हैं, स्वयं अहङ्कारी हैं ।

व्यक्ति—तनिक समझाइये ।

फ़क़ीर—संसार शब्दों के जाल में इतना फँसा हुआ है कि वाणी जाल से निकलना दुस्तर हो रहा है और इस वाणी जाल ने मानव जाति को मनुष्यता से गिरा दिया है यह वाणी जाल ही है जिसका परिणाम प्रत्येक व्यक्ति इस समय भुगत रहा है । देश, जाति और धर्म, इस वाणी जाल के कारण ! मतभेद उपद्रव और अशान्ति के कारण हो रहे हैं । सुनिये ! मैं अपने आपको दयाल क्यों कहता हूँ ? दयाल के अर्थ हैं कि दया करें । दया के अर्थ हैं किसी वस्तु का देना जिसके लिए दूसरे व्यक्ति को परिश्रम और कष्ट आदि उठाना पड़े और वह वस्तु उसको बिना मूल्य मिल जाय ।

मैं अपने सतगुरु दयाल महऋषि जी को दयाल कहता था, उनकी पवित्र, पुनीति विभूति ने मुझको सार भेद, सत्यता और रहस्य बिना मूल्य दिया और इस सार भेद और सार ज्ञान को मैं भी बिना मूल्य के देता हूं इसलिए मैं दयाल हूं और वह देना है क्या ? सार भेद का पता अथवा सार ज्ञान का रहस्य । वह मैं अपने बचनों और वाणी द्वारा संकेत में देता हूँ । लेने वाले को केवल अपने ध्यान से लेना है और बस ।

पहले दाता शिष्य भया, जिन तन मन अर्पा शीश ।
पीछे दाता गुरु भया, जिन नाम दिया बख्शीश ।।

मैं नाम देता हूँ । नाम के अर्थ हैं कि यह बताना कि हम

कौन हैं, क्या हैं, कहां से आये, कहाँ जाँयगे, हमारा आदि अन्त क्या है ? इस समझ का नाम लेना और नाम देना है। लेने वाला इस समझ को अपने ध्यान से लेता है और देने वाला इस समझ को इस सार भेद को अपने बचनों द्वारा देता है। यह यथार्थ में सुरत शब्द योग है जिसकी शिक्षा सत्त पुरुष कबार साहब, राधास्वामी दयाल, गुरु नानक साहब, दातादयाल महऋषी जी महाराज व अन्य सच्चे सन्तों और ऋषियों ने सतसंग द्वारा दी है। चूँकि प्राणी इसके लेने के अधिकारी नहीं हैं अथवा नहीं थे इसलिए उनको इस समझ के अधिकारी और जिज्ञासू बनाने के लिए एकाग्रता मन उत्पन्न करने के विचार से मानसिक योग, नाम का जपना, कर्मयोग, भक्तियोग आदि उनकी प्रकृती के अनुसार बताये गये जिसस कि वह इस साधन से नाम के और सार भेद समझने के अधिकारी हो जांय। संसार शब्दों के जाल में फँसा हुआ है और यह वाणी जाल अति कठिन है।

हे विद्या तू बड़ी अविद्या, सन्तन की तैं क़दर न जानी।
सन्त प्रेम के सिंधु भरे हैं, तैं उलटी बुद्धि की चढ़ सानी ॥
सन्तन प्रेम लगा प्यारे से, इनको सूरत शब्द समानी।
तू धन मान प्रतिष्ठा चाहे, और चतुरता में लिपटानी ॥
कलि मे जीव बहुत तैं घेरे, विरले गुरु मुख बचे निदानी।
उनकी प्रेम अनुभवी बानी, तू बुद्धा संग रहत खपानी ॥
विद्या पढ़ पढ़ बहुत पचे हैं, प्रेम बिना कुछ हाथ न आनी।
अर्थ सम्प्रदा कर कर फूल, अनुभव की इन सार न जानी ॥
बानी बन में रहे भुलाने, पढ़ पढ़ पोथी जन्म बितानी।
घट के भीतर नेंक न ठहरें, मन चन्चल की गति न पिछानी।
बाहर मुखी ग्रन्थ नित पढ़ते, घट की पोथी पढ़े न पढ़ानीं।
सन्त गगन में सुरत चढ़ावें, वे सुनते नित वहाँ की बानी ॥

व्यक्ति—आपकी वाणी मे एक ऐसी

डालती है सार समझाने का प्रयत्न इसमें अवश्य है किन्तु व्याख्या की आवश्यकता है। मैं समझ गया कि आप दयाल अपने को क्यों कहते हैं किन्तु व्यक्ती इसके अर्थ और कुछ लेते हैं।

फ़क़ीर—व्यक्ती क्या अर्थ लेते हैं?

व्यक्ती—यह कि आप गुरू बनना चाहते हैं और अपने आपको सबसे श्रेष्ठ, उच्च, उत्तम और महापुरुष प्रगट करते हैं।

फ़क़ीर—आहा! क्या किसी से कोई धन मांगता हूं? क्या कोई स्वार्थ है?

व्यक्ती—तो क्यों फिर आपने बिना किसी कारण के सत-संग का क्रम प्रचालित किया हुआ है? इसमें क्या आपका कोई स्वार्थ है?

फ़क़ीर—सांसारिक मान प्रतिष्ठा, पाखन्ड, धोखा से तात्पर्य नहीं है। हां! तात्पर्य है तो यह है कि संसार के दुखी प्राणी अथवा मनुष्य रहस्य को समझ कर संसार में शांति और प्रेमपूर्वक रह कर मतभेद, पक्षपात, अशांति मेंटकर बिना किसी दुख के अपना जीवन व्यतीत करें। बस! यह स्वार्थ है और कोई कारण इस सतसंग के कराने का नहीं है। मैं स्वयं दुखी था, अशांत था, भ्रमग्रस्त था, वाणी जाल में फँसकर दुखी था इसलिए अपने दुख का अनुमान लगाकर मैं यह चाहता हूँ कि मानव जाति सार भेद लेकर सार ज्ञान जान कर और स्वतन्त्र विचार होकर आपस में भाई भाई बनकर अपनी जीवन यात्रा को प्रेम के साथ समाप्त करें और संसार में शांति, निर्भ्रांति और सुख हो।

व्यक्ति—तो आप सार भेद अथवा सार ज्ञान को स्पष्ट व्यक्त करते हैं और उसके बदले में कुछ लेते नहीं। इसी दृष्टि-कोण से आप अपने को दयाल कहते हैं। क्यों यही बात है अथवा और कुछ?

फ़क़ीर—हाँ! यही बात है मैं दयाल हूं, मेरा सतगुरु दयाल

था। उस पवित्र स्वरूप ने सत्यता को विभिन्न रूपों में वर्णन किया और मैने भी वही नियम धारण किया है। यदि आप मेरे वास्तविक भाव और मन्तव्य को समझें और वाणी जाल से निकलें तो तुरन्त ही समझ जांयगे कि मैंने शब्द दयाल अपने लिए अहङ्कार के रूप में प्रयोग नहीं किया है। संसार बौरा गया है। वाणी जाल में फँसकर अथवा शब्दों के गोरख धन्धे में फँसकर वास्तविकता से दूर पथ भ्रष्ट हो रहा है।

व्यक्ति—आप कहते हैं कि आप गुरुओं के गुरू हैं।

फ़क़ीर—हां! सत्य है। सुनिये! गुरू उसे कहते हैं जो अन्धकार को दूर करे। अन्धकार क्या है?

अनसमझी, अज्ञान, भ्रम, संशय, सन्देह, अटक, भटक जो प्राणी के अज्ञान अथवा भ्रम को दूर करे वह गुरू है और वह क्या वस्तु है जो इन वस्तुओं को दूर करती है? वचन, वाणी, सार भेद, सार ज्ञान, सार समझ, वास्तव में वाणी गुरू है यद्यपि वह वाणी, वचन प्राणी समझे।

व्यक्ति—आप गुरुओं के गुरू किस प्रकार हुए?

फ़क़ीर—खेद है! आप मेरे मन्तव्य को नहीं समझे।

आजकल के गुरू प्रगट होकर यह दावा करते हैं कि वह यह कर सकते हैं, वह कर सकते हैं, प्राणिओं को सत्त लोक पहुंचाने अथवा भगवान से मिलाने अथवा कुछ कर देने तथा बना देने के ठेकेदार बनते हैं। यद्यपि मैं यह कहता हूँ कि कोई प्राणी किसी को कुछ नहीं दे सकता है। जो कुछ किसी को लेना है वह स्वयँ ही बात को समझकर ग्रहण करके स्वयं ही लेता है। देने वाला केवल सत्यता का वर्णन करता है। लेने वाला यदि चाहे तो स्वयं बात को समझ कर साधन करके सार भेद ले सकता है। इसी कारण कबीर साहब ने वर्णन किया है।

पहले दाता शिष्य भया, जिन तन मन अर्पा शीश।

पीछे दाता शिष्य भया, जिन नाम दिया बख्शीश ।।

लेने वाला जब तक स्वयं दुखी होकर, जिज्ञासू बनकर अपना ध्यान नहीं देता अथवा स्वयं खोजी नहीं होता देने वाला कुछ नहीं दे सकता है। जो गुरू बनकर यह आस्वाशन देता है कि मैं यह करूँगा, मैं वह करूँगा, प्राणियों को सन्त लोक पहुँचाऊँगा अथवा मुक्ति दूँगा वह स्वयं अज्ञानी है, पाखन्डी है, धोखेबाज है, उसमें सचाई नहीं है।

प्राणियों को धोखा दिया जा रहा है और गद्दियाँ बना बना कर लूटा जा रहा है। सन्तमत लोप हो गया, सत्यता लुप्त हो गई, काल मत फैला हुआ है, इसलिए मैं स्पष्ट रूप में वर्णन करता हूँ और ऐसे गुरुओं का गुरू अपने आपको कहता हूँ। यह झूँठा गुरुत्व अन्ध पाखन्ड जाल है, स्वयं मनमत है। मैं इसको दयाल मत में परिवर्तन करना चाहता हूं। यह सबके सब काल मत के क्षेत्र में फँसे हुए हैं।

व्यक्ति—मैं आपके संकेत के मन्तव्य को समझता हूँ किंतु स्पष्ट रूप में नहीं समझ सका। आपका मन्तव्य यह है कि यह गुरूपना प्राणी को सच्ची शांति, निभ्रांति, निजधाम मुक्ति आदि नहीं दे सकता।

फ़क़ीर—निस्सन्देह ! इसका प्रमाण सतसंगियों से पूछिए। बीस बीस वर्ष हो गये किन्तु तनिक भी दशा नहीं बदली। भेंट चढ़ावा देते २ उकता गये और बेचारे इच्छा में हैं कि मरते समय सतगुरू पार उतारेंगे। भला इसी मूर्खता और अज्ञानता का भी कहीं ठिकाना है।

परम सन्त कबीर साहब की वाणी है।

जाको दर्शन इत्त है, ताकी दर्शन उत्त।
जाको दर्शन इत नहीं, ताको इत्त न उत्त।

पूर्ण गुरू का बालिका अपने इसी जीवन में भ्रमों का

नाश करके स्वयं उस अवस्था में चला जाता है जहाँ न मुक्ति है न बन्धन, मृत्यु है न जीवन, ईश्वर न राम न भगवान, न खुदा न परमेश्वर जिसका नाम निज स्वरूप, अपना आप, अपनी ज़ात, राधास्वामी धाम, निज नाम, सर्वाधार, अमर पद, अभय पद, पराधीनता से मुक्ति आदि आदि हैं।

व्यक्ति—फिर वह मिलती किस प्रकार है?

फ़क़ीर—मिलना क्या है? सारभेद को समझना है। सार ज्ञान को लेकर निर्द्वन्द अवस्था में विचरना है जीवन मुक्ति तथा निदेह मुक्ति की अवस्था में आना है—

नहीं कुछ लेना नहीं कुछ देना, नहीं कुछ कर्म कमाना हो।
नहीं कोई ध्यान नहीं कोई सुमिरन, नहीं कोई नाम जपाना हो॥
ऐसी दशा मिली गुरु कृपा, इसमें नित्त रहाना हो।
कहत फ़क़ीर सुनो मेरे भाई, गुरु गम अनुभव पाना हो॥
माया काल महा अन्याई, इनको बस में लाना हो।
सतगुरु दाता जग में प्रगटे, इनमे भेद को पाना हो।
करो सतसंग भेद को समझो, मिटै तिमिर अज्ञान ना हो॥
सांच कहूं कोई माने नहीं, कपट मे हानि महाना हो॥

व्यक्ति—अब भी स्पष्ट नहीं हुआ। अपने मन्तव्य को और स्पष्ट कीजिये।

फ़क़ीर—वाणी जाल महा दुखदाई, निकले कोई गुरु ज्ञानी हो।
निकले कोई सतगुरु का प्यारा, जो सन्तमत पहिचानी हो॥

ऐ मित्र! मैं अपने आपको गुरूओं का गुरू इस कारण कहता हूँ कि प्राणी यह समझते हैं कि गुरू उनको कुछ देगा। मैं कहता हूं कि पूर्ण सतगुरू देता है किन्तु वह है क्या? सार भेद, सार ज्ञान, वास्तविक नाम सत्त नाम कि तुम कौन हो, अपना आदि अन्त समझो। जब समझ आ जायगी यह संसार का खेल वास्तव में खेल प्रतीत होगा

को एक ऐसी दशा में ले जायगा जहाँ निद्वन्द अवस्था अचिन्तपन और स्वतन्त्रता है। जन्म मरण, गुरू और शिष्य का भ्रम समाप्त हो जायगा। यह समझ लो और यह दशा सच्चे और निःस्वार्थ गुरू के वचन को धारण करने से आती है। इससे अधिक मैं क्या कहूँ ? सतसंग करना आवश्यक है। वह रहस्य और भेद मैं शब्दों अथवा वाणी द्वारा देता हूँ जिससे कि जो प्राणी उसकी खोज में आगरा, व्यास, देहली, मथुरा, काशी, प्रयाग और हरिद्वार आदि दौड़ते हैं उनको अपने अन्तर अपने ही आप में वास्तविकता का पता लग जाय। कबीर साहब की वाणी है:—

वस्तु कहीं ढूँढे कहीं, केहि विधि आवे हाथ।
कहैं कबीर तब पाइये, जब भेदी लीजे साथ॥
भेदी लीना साथ कर, दीनो वस्तु लखाय।
कोटि जन्म का पन्थ था, पलमें पहुँचा जाय॥

व्यक्ति—धन्य है आप प्रयत्न कर रहे हैं कि मानव इस विशेष रहस्य को समझे किन्तु प्रत्येक व्यक्ति नहीं समझ सकता। इसका मुख्य कारण क्या है ?

फ़क़ीर—मन अमन नहीं हुआ, चित अचित नहीं हुआ, बुद्धि थिर और निश्चयात्मिक नहीं हुई। दूसरे शब्दों में महासुन्न अथवा निरविकल्प समाधि की अवस्था नहीं आई। प्रिय दाता हुजूर पवित्र पुनीत रायबहादुर सालिगरामजी की वाणी आपने नहीं पढ़ी। एक स्थान पर वह लिखते हैं कि सतगुरु की प्राप्ति महासुन्न के आगे होती है। जब तक प्राणी निर्दन्द्व अलमस्त नहीं होता और चित की वृति निरोध को प्राप्त नहीं होती कोई व्यक्ति सार भेद और सार ज्ञान के रहस्य से परिचित नहीं हो सकता।

हे प्राणियो! यदि समझ नहीं आई हो तो अभ्यास करो अपनी सुरत को अपने आप में ठहराओ और प्रेम करो। प्रेम ... है। इस साधन से तुममें एकाग्रता आयेगी

फिर किसी पूरण पुरुष के सत्संग से तुम्हें स्वतन्त्रता की धन सम्पति प्राप्त होगी।

व्यक्ति—भलो प्रकार समझ गया आप जो अपने आपको गुरुओं का गुरु और दयाल कहते हैं सत्यता के विचार से तो ठीक है किन्तु इससे प्राणी पथ-भ्रष्ट होंगे और आपको मालिक का रूप जानकर क्या स्वयं भ्रम में फिर न पड़ेंगे।

फ़क़ीर—धन्य है! तू सतपुरुष है तूने सत्यबात कही है, किन्तु जब वह ऐसा समझेंगे तो सत्संग में आयगे, उस समय सत्यता की बात सुन कर रहस्य लेकर उनका वह मालिक पूजा अथवा गुरू पूजा का त्रुटि पूर्ण भ्रम सत्सङ्ग से दूर हो जायगा। इसी कारण मैं स्वतन्त्र होकर सत्यता की डंके की चोट उच्च स्वरों में पुकार करता हूँ, कि मैं दयाल हूँ और गुरुओं का गुरु हूँ। यह क्यों कहता हूँ क्योंकि प्राणी वास्तविकता के खोजी हैं और जो मालिक, ईश्वर खुदा अथवा गुरु के भ्रम में ग्रस्त हैं वह सत्सङ्ग में सच्चाई को समझकर इस त्रुटि पूर्ण भ्रम को मन से निकाल दे। इस त्रुटि पूर्ण भ्रम से संसार में मतभेद, उपद्रव, पाखण्ड उत्पात, लड़ाई झगड़ा, केन्द्र, क्षेत्र, और दलबन्दी पक्षपात का रोग बुरी प्रकार फैल गया है। इससे मुक्त होकर मानव जो स्वयं एक पूर्ण अस्तित्व है अपने आपको समझकर संसार में सुख शाँति और प्रेम का प्रचार करे। इसी विचार के अन्तर्गत सत्पुरुष राधास्वामी दयाल ने अपने आपको मालिक सर्वाधार का रूप बताकर जीवों को सार भेद की घोषणा की थी। इसीलिए कबीर साहब ने भी यही पुकार की, न भगवान बने, न भक्त वरन् पूरन पुरुष और रहस्य ज्ञाता थे। आशा है अब तुम्हारा भ्रम जाता रहा होगा।

व्यक्ति—निस्सन्देह जाता रहा समझ गया किन्तु ऐसी दया हो कि भगवन यह ...

फ़क़ीर—मैं दयाल हूँ और दया कर रहा हूँ। किन्तु वह दया क्या है? अनेक बार समझा चुका हूँ। मेरी बात को ध्यान पूर्वक सुनो और मेरे शब्दों को दृढ़ता के साथ धारण करो मनन करो और जीवन साधन सम्पन्न बनाओ।

शब्द गुरु को कीजिए, बहुते गुरु लबार।
अपने अपने स्वाद को, ठौर ठौर बटमार॥

मैं इस पाखन्ड जाल में जीवों को फँसाना नहीं चाहता हूँ। जैसे कि यह महात्मा सिर मार मार कर अपनी भेट चढ़ावा और मान प्रतिष्ठा के लिए स्वांग बनाते हैं मैं बल्कि सच्चा दयाल होता हुआ सच्चाई का शब्द सुनाता हूँ और वह यह है कि अपने अन्तर धँसो मन के परदों में घुसकर स्वयँ विचार और अनुभव करो यही वास्तविक पन्थ है। मन से मन को जानना अपने आपको आप पहिचानना कहा और का नेक न मानना। यह दया है कि सार बात मैं बता रहा हूँ सोचो, समझो शब्दों को ग्रहण करो और उनके तत्व को समझो। मेरा सत्सङ्ग करो। मैं स्वयँ निर्बन्ध होकर और बन्धन में आकर तुम्हें मुक्त होने की पुकार करता हूँ।

मेरे दयाल दाता ने मुझको मुक्त किया निर्बन्ध किया। अब मैं इस दयाल शब्द और गुरुओं के गुरु बनने के कल्पित बन्धन में आकर आपको निर्बन्ध करना चाहता हूँ यों न मैं दयाल हूँ न गुरु हूँ। मैं कौन हूँ? मैं जानता हूं बस इससे अधिक क्या कहूँ। आज का सत्सँग समाप्त राधास्वामी।

व्यक्ति—अभी नहीं महाराज मुझे कुछ और प्रश्न करने

नहीं है। संसार को पेट की साँसारिक इच्छायें वासनायें और स्वार्थ की आवश्यकतायें हैं।

फ़क़ीर—होनी चाहिए। क्यों न हों? जीवन है जीवन में पेट सर्व प्रथम है, संसार है, किन्तु इसमें सचाई हो, सचाई का व्यवहार हो कौन कहता है व्यवहार, बंज व्यौपार न करो। खूब व्यवहार करो किन्तु धोखा न हो।

व्यक्ति—आप मेरे मन्तव्य को समझ गये अब मेरे प्रश्न का उत्तर दीजिए।

फ़क़ीर—दे रहा हूं। आपका तात्पर्य सम्भवतः यही है कि सचाई से बात करने में दायराबन्दी और पेट पूजा नहीं हो पाती।

व्यक्ति—हाँ? किसी सीमा तक यह बात भी है।

फ़क़ीर—व्यवहार करो, परन्तु सचाई से करो। मानव मानव सब एक हैं कोई बड़ा नहीं कोई छोटा नहीं भाई भाई के काम आओ जैसे तुम हो वैसा मैं हूँ।

पारस में और सन्त में, यही अन्तरो जान।
वह लोहा कंचन करे, यह कर लें आप समान॥

सन्त के कोई सींग पूछ नहीं होते वह केवल निर्बन्ध होता है, दूसरे बन्धन में हैं और यह बन्धन भ्रम है, माया है, अज्ञान है। सत्संग करो रहस्य को समझो आपस में प्रेम से रहो और फ़िर संसार का कार्य करो। यही बात बताने के लिए राधास्वामी दयाल प्रगट हुए थे कि हम सब के सब उस परम तत्व सर्वाधार के अंश हैं। हम में कोई अन्तर नहीं। जैसा एक वैसा दूसरा।

और धर्म को जिसका कि नाम राधास्वामीमत, नानकमत, कबार मत,सन्तमत अथवा सूफ़ियों का मत है, प्रचार करो। प्राणी मात्र की सेवा करो, सुख दो और सुख पहुँचाओ। क्यों भ्रम में आये हुये हो। वाणी जाल में आकर मानव ने मानव से घृणा, द्वेष और ईर्षा की सत्यता को प्रगट भी करना चाहा तो परदा रक्खा परिणाम उपद्रव, उत्पात, लड़ाई झगड़ा हुआ। धन सम्पत्ति गद्दियों और भेंट चढ़ावा की राशि के लिए मुकद्दमे बाजियां लट्ठ बाजियाँ और फ़ौजदारियां होती हैं। गुरू बनते हुए न्याया-लयों का द्वारा खट खटाया जाता है और संसारी मुकद्दमेबाजों की भाँति अर्थ अनर्थ से सफलता की आशा की जाती है। क्या यही शाने फ़कीरी है खेद है संसार ने इन पर बुरी प्रकार से छापा मारा। यदि फिर मौज हुई तो कभी वार्तालाप होगी। इस समय यह ही पर्याप्त है।

राम नाम लौ लागो हमरी, राम नाम लौ लागी। टेक०
ज्ञान भानु अब प्रगट भयो है, सोई सुरत अब जागी। हमरी
उमड़ पड़ो है प्रेम का सागर आशा तृष्णा भागी ॥ हमरी
हृदय मण्डल प्रकाश भयो है, जगमग जोति है जागी। हमरी
आ पहुँचे निर्वाण नगर जहाँ, द्वेषी हैं ना रागी ॥ हमरी
घर के पट चौपट सब हुए, माया सरपट भागी। हमरी
मधुर मनोहर अमृत वर्षा, घट में वर्षन लागी ॥ हमरी
आत्म दर्श रस भीगी अखियां, रसना हरि रस पागी। हमरी
अनहद बाजे बाज रहे हैं, शब्द की धुन है लागी ॥ हमरी
काम क्रोध भूले नहीं ब्यापें, मनुआँ भयो है त्यागी। हमरी
'शाहंशाह' अब मग्न भये हैं, निज आनन्द अनुरागी ॥ हमरी

चेतावनी— अरे मन आज सुमिर गुरु नाम। टेक
क्या जाने क्या होगा पल में, सदा नहीं विश्राम।
माया मोह में भूला निशदिन ब्यापा क्रोध और काम ॥
सावधान होय सुन गुरु वाणी, तजदे मोह निकाम ॥
काल कर्म की गति है न्यारी, भक्ती कर निष्काम ॥

MAHRISHI

SHIVBRAT LAL MAHARAJGI

M. A. LL. D.